□डा० प्रेमसुमन जैन, एम० ए०, पी-एच० डी०
(संस्कृत विभाग, उदयपुर विश्वविद्यालय)

राजस्थानी भाषा में प्राकृत-अपभ्रंश के प्रयोग

□

आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास में संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं का पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। राजस्थानी एवं गुजराती भाषाएँ साहित्य की दृष्टि से पर्याप्त विकसित हो चुकी हैं। ध्वनिविज्ञान एवं रूपविज्ञान की अपेक्षा से इनका स्वतन्त्र अस्तित्व है। किन्तु इन भाषाओं के विकास-क्रम एवं प्राचीन स्वरूप को जानने के लिए इन पर प्राकृत एवं अपभ्रंश के प्रभाव का अध्ययन करना आवश्यक है। इससे प्राचीन एवं अर्वाचीन भाषाओं का सम्बन्ध भी स्पष्ट हो सकेगा।

उत्पत्ति एवं सम्बन्ध

विद्वानों का यह सामान्य मत है कि विभिन्न आधुनिक भारतीय भाषाएँ अलग-अलग अपभ्रंशों से उत्पन्न हुई हैं।[1] जिसे आज 'राजस्थानी' कहा जाता है वह भाषा नागरअपभ्रंश से उत्पन्न मानी जाती है[2], जो मध्यकाल में पश्चिमोत्तर भारत की कथ्य भाषा थी। राजस्थानी भाषा के क्षेत्र और विविधता को ध्यान में रखकर डा० सुनीतिकुमार चटुर्ज्या—इसकी जनक भाषा को सौराष्ट्र-अपभ्रंश[3] तथा श्री के० एम० मुन्शी गुर्जरी-अपभ्रंश[4] कहते हैं। राजस्थानी भाषा बहुत समय तक गुजराती भाषा से अभिन्न रही है इसलिए उसकी उत्पत्ति को विभिन्न अपभ्रंशों से जोड़ा जाता है। वस्तुतः छठी शताब्दी से ११वीं शताब्दी तक पश्चिमोत्तर भारत में जो सामान्य विचार-विनिमय की कथ्य-भाषा थी, उसी से राजस्थानी विकसित हुई है। विद्वान् उसे 'पुरानी हिन्दी' नाम से भी अभिहित करते हैं।

राजस्थानी भाषा राजस्थान और मालवा के अतिरिक्त, मध्यप्रदेश, पंजाब तथा सिन्ध के कुछ भागों में बोली जाती है।[5] अतः कई उपभाषाओं का सामान्य नाम राजस्थानी है, जो आधुनिक विद्वानों ने स्थिर किया है। इसका प्राचीन नाम 'मरुभाषा' था जिसका सर्वप्रथम उल्लेख उद्योतनसूरि ने 'कुवलयमालाकहा' में किया है। उत्तरकालीन ग्रन्थों में इस भाषा के लिए 'मरुभाषा' मरुभूमिभाषा, मारु-भाषा, मरुदेशीयाभाषा, मरुवाणी, डिंगल आदि नाम प्रयुक्त हुए हैं। इनसे स्पष्ट है कि राजस्थानी मुख्यतः मारवाड़-भूभाग की भाषा है। यद्यपि उसका प्रभाव पड़ौसी प्रान्तों की भाषा पर भी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजस्थानी भाषा के अन्तर्गत कई बोलियाँ हैं, जिनका विभाजन विद्वानों ने कई दृष्टियों से किया है।[८] डा० ग्रियर्सन का विभाजन अधिक उपयुक्त है। पूर्वी राजस्थानी—ढूढाड़ी एवं हाड़ौती, दक्षिणी राजस्थानी—मालवी निमाड़ी, उत्तरी राजस्थानी—मेवाती तथा पश्चिमी राजस्थानी—मारवाड़ी एवं मेवाड़ी। इन सब में मारवाड़ी साहित्यिक दृष्टि से अधिक समृद्ध है। राजस्थानी भाषा की इन सभी बोलियों पर प्राकृत-अपभ्रंश का प्रभाव पड़ा है। इनके कई प्रयोग आज भी राजस्थानी में देखे जा सकते हैं।

प्राकृत एवं अपभ्रंश के जो तत्व राजस्थानी भाषा में उपलब्ध हैं, वे दो प्रकार के हैं—(i) राजस्थानी का जो प्राचीन साहित्य है उसके ग्रन्थों की भाषा पर तथा (ii) वर्तमान की बोल-चाल एवं साहित्यिक राजस्थानी पर। किसी भी भाषा पर अन्य भाषा का प्रभाव दो प्रकार से पड़ता है—ध्वनि-परिवर्तन द्वारा एवं व्याकरण के आधार पर। राजस्थानी में प्राकृत एवं अपभ्रंश के ये दोनों प्रकार के तत्व उपलब्ध हैं।

ध्वनि-तत्व

राजस्थानी में भाषा-विज्ञान की दृष्टि से अनेक ध्वनि-परिवर्तन हुए हैं। किन्तु राजस्थानी के परिवर्तित रूपों का मूल अपभ्रंश या प्राकृत-रूप क्या था, कह पाना कठिन है। इन भाषाओं के साहित्य में प्रयुक्त कुछ शब्दों के आधार पर राजस्थानी भाषा के ध्वनि-परिवर्तनों को देखा जा सकता है।

स्वर

आचार्य हेमचन्द्र ने अपभ्रंश का नियोजन करते हुए एक सूत्र दिया है—

स्यादौ दीर्घह्रस्वौ ।। ३३० ।।—अर्थात सि=सु आदि विभक्तियाँ परे रहें तो संज्ञा शब्दों के अन्त्यस्वर का प्रायः दीर्घ या ह्रस्व हो जाता है। यही प्रवृत्ति राजस्थानी में उपलब्ध है। यथा—

(i) दीर्घ का ह्रस्व होना—धण<धन्या, रेह<रेखा, बहु<बधू आदि।

(ii) ह्रस्व का दीर्घ होना—ढोल्ला<ढोल, सामला<श्यामल,
संगाइ<संगति, हीय<हिय<हृत आदि।

(iii) ऋ का परिवर्तन—प्राकृत एवं अपभ्रंश में ऋकार का अनेक स्वरों में परिवर्तन होता है। राजस्थानी में यह प्रवृत्ति सुरक्षित है यथा—

रिसी<ऋषि, नाच<नच्च<नृत्य,
तिन<तृण, बड्ढो<वृद्ध आदि।

व्यंजन

प्राकृत के व्यंजन-परिवर्तनों की सामान्य प्रवृत्ति को अपभ्रंश ने बनाये रखा। राजस्थानी में यद्यपि इसके प्रयोग कम हो गये हैं, फिर भी कुछ तत्व उपलब्ध हैं, यथा—

नेर<नयर<नगर, सायर<सागर, सहि<सखि,
कोइल<कोकिल, जुज्झ<युद्ध, डोला<दोला,
डाह<दाह, भणइ<पढइ<पठति आदि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार स्वरागम, व्यंजनागम, विपर्यय आदि के रूप भी राजस्थानी में खोजे जा सकते हैं। वस्तुतः यह पूरा विषय भाषावैज्ञानिक अध्ययन का है। तभी राजस्थानी के ध्वनि-परिवर्तनों को पूर्णतया स्पष्ट किया जा सकेगा।

व्याकरण-तत्व

राजस्थानी भाषा के व्याकरणमूलक अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस समुदाय की बोलियों में शब्द-समूह, वाक्य-संरचना, क्रियापद आदि के स्तर पर अनेक नवीनताएँ विकसित हो गयी हैं। फिर भी मूल भाषा प्राकृत एवं अपभ्रंश के व्याकरण के तत्वों का प्रभाव इनमें अधिक है। यद्यपि संस्कृत-व्याकरण का प्रभाव भी कम नहीं है।[८]

संज्ञा

राजस्थानी के संज्ञा रूपों की रचना पर प्राकृत का सीधा प्रभाव है। प्राकृत में प्रथमा विभक्ति के एक वचन परे रहते अकार को ओकार होता है। यथा—रामो<रामः, सुज्जो<सूर्यः, मिओ<मृगः आदि। राजस्थानी में एक वचन में ओकारान्त संज्ञापद ही अधिक हैं। यथा—घोडो, छोरो आदि। इनका प्रयोग इस प्रकार होता है—

घोडो जाइ र्‌यो है। छोरो रो र्‌यो है। आदि।

कुछ विद्वान राजस्थानी का अपभ्रंश से विकास होने के कारण राजस्थानी की इस ओकारान्त प्रवृत्ति को अपभ्रंश की उकारान्त प्रवृत्ति से विकसित मानते हैं। हेमचन्द्र के **स्यमोरस्योत्** ॥ ३३१॥ सूत्र के अनुसार अप० में प्र० एवं द्वि० एक वचन परे रहते अकार का उकार होता है। यथा—दहमुहु< दसमुख, संकरु<शंकर आदि। हो सकता है अपभ्रंश की उकार बहुला प्रवृत्ति राजस्थानी में आकर फिर प्राकृत की ओर लौट गयी हो।

राजस्थानी में बहुवचन संज्ञापद आकारान्त होते हैं। यथा—'इ घोडा कूंणका है।' प्राकृत एवं अपभ्रंश में भी बहुवचन में 'घोडा' ही होगा। यथा—एइ ति 'घोड़ा'; आयासे 'मेहा' सन्ति; पव्वयम्मि 'रुक्खा' ण सन्ति आदि।

विभक्ति का अदर्शन

प्राकृत में चतुर्थी और षष्ठी विभक्ति को एक कर दिया गया था।[९] यह प्रवृत्ति लोकभाषा द्वारा प्राकृत में आयी थी। अपभ्रंश में विभक्तियों के प्रयोग में अधिक शिथिलता देखने को मिलती है। इसमें मुख्यतः प्रथमा, षष्ठी और सप्तमी ये तीन ही विभक्तियाँ रख गयीं।[१०] आभीर, गुर्जर आदि जातियों द्वारा उच्चारण-सौकर्य के कारण यह प्रवृत्ति अपभ्रंश में विकसित मानी जा सकती है।[११] इसका प्रभाव गुजराती और राजस्थानी भाषाओं पर भी पड़ा। हेमचन्द्र ने अपभ्रंश में प्रथमा एवं द्वितीया विभक्ति के लोप[१२] का विधान करते हुए उदाहरण दिया है।

'एइ ति **घोडा** एह **थलि**।'

यहाँ पर 'एइ घोडा' में जस का और 'एइ थलि' में सि विभक्ति का लोप है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजस्थानी की मारवाड़ी बोली में कर्ता एक वचन में प्रतिपादिक ही पद के रूप में प्रयुक्त होता है तथा बहुवचनसूचक रूपिम (Magphemes) जोड़ा जाता है। कर्ता की कोई विशेष विभक्ति नहीं होती। मारवाड़ी के उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(i) **छोरो** रोटी खा र्‌यो है।

(ii) **छोरा** रोटी खा र्‌या है।

इन वाक्यों में 'छोरो' एक वचन में है, उसकी (कर्ता) कोई विभक्ति नहीं है। इसी प्रकार 'छोरा' में 'आ' बहुवचन सूचक है, किन्तु कर्ता में कोई विभक्ति नहीं है। इस प्रकार अन्य विभक्तियों के उदाहरण भी राजस्थानी में खोजे जा सकते हैं, जिनका प्रयोग नहीं होता।

विभक्ति की अदर्शन-प्रवृत्ति से प्रभावित होकर प्राकृत-अपभ्रंश में निपात एवं परसर्गों का प्रयोग होने लगा था। प्राकृत वैयाकरण पुरुषोत्तम ने डा (१८) और डु (२०) प्रत्ययों का प्रयोग बहुवचन में बतलाया है। हेमचन्द्र ने भी अ, डड, डुल्ल इन प्रत्ययों का प्रयोग संज्ञा शब्दों के साथ बतलाया है।[१४] उदाहरण दिया है—

'महु कन्तहो बे दोसडा' (मेरे कन्त के दो दोष हैं)

राजस्थानी में दोसडा, दिवहडा, रुक्खडा, सन्देसडा आदि प्रयोग आज भी होते हैं। स्त्रीलिंग में राजस्थानी में यह प्रत्यय डी हो जाता है। लोकगीतों में 'गोरडी' रूप बहु-प्रयुक्त है।

सर्वनाम

प्राकृत के सर्वनामों की संख्या अपभ्रंश में न केवल कम हुई है, अपितु उनमें सरलीकरण भी हुआ है। राजस्थानी में अपभ्रंश के बहुत से सर्वनाम यथावत् आ गये हैं अथवा उनमें बहुत कम परिवर्तन हुआ है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

'हउं मन्द बुद्धि णिग्गुणु णिरत्थु।' (भविसयत्त कहा १/२)

'हउं पुणु जाणमि' (दोहाकोस, १४४)

यहाँ **मैं** के लिए **हउं** शब्द प्रयुक्त हुआ है। गुजराती में हुं के अनेक प्रयोग मिलते हैं। राजस्थानी में साहित्य एवं बोलचाल दोनों में इसका प्रयोग होता है। यथा—

'**हउं** ऊजालिसि आयणा' (अचलदास खीची-री वचनिका १४-५)

'**हउं** कोसीसा कंत' (१४-६)

'हूं पापी हेक्लौ, सुजस नह जाणां सांमी।'

'हूं वेदां वाहरु किसन' (पीरदान ग्रन्थावली, पृ० ५१-५३)

'हूं पाठवी तीणइ तूंअ पासि' (सदयवत्स वीरप्रबन्ध, ४८६)

इसी प्रकार अन्य सर्वनामों में भी साम्य दृष्टिगोचर होता है। हेमचन्द्र ने **'किमः काइं-कवणौ वा'** ।। ३६७ ।। सूत्र द्वारा कहा है कि अपभ्रंश में किम् शब्द के स्थान पर 'काइं' और 'कवण' विकल्प से आदेश होते हैं। यथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'**काइं** अधोमुंह तुज्झु'

'ताइं पाराई कवण '**घ्रण**' आदि

राजस्थानी के बोलियों में इसके विविध प्रयोग मिलते हैं। यथा—ढूंढाड़ी में '**काइं छैं**' मेवाड़ी में '**कंइ है**' तथा मारवाड़ी में '**कंई हुओ**' आदि। साहित्य में इसके प्रयोग देखे जा सकते हैं यथा—

'तु **काइं** हिंगोलि'

'तम्हइ **कांइ** मानउ आपणा' (अ० खीची० री० ब०, १-१—२१.९)

कवण के यथावत् प्रयोग भी देखने को मिलते हैं। यथा—

'**कवण** वज्र झेलियइ'

'**कउण** सिरि वीज सहारइ' (वही. २४)

बोलियों में ढूंढाड़ी का '**कुण**', मेवाड़ी और मारवाड़ी का '**कूंण**' अपभ्रंश 'कवण' के ही रूपान्तर हैं, जिसका हिन्दी में 'कौन' हो गया है। इनका विकास इस क्रम से हुआ प्रतीत होता है—

क:पुन:>को उण>कवुण>कवण>कउण>कुंण>कूंण>कौन।

गुजराती के 'केम' 'एम' भी सीधे अपभ्रंश से आये हैं। हेमचन्द्र के '**कथं-यथा-तथां थादेरेमेमेहेघाडित:**'॥ ४०१ ॥ सूत्र के अनुसार अपभ्रंश में कथं, यथा, तथा के 'था' को 'एम' और 'इम' आदेश होते हैं। यथा—

'**केम** सगप्पउ दुट्ठु दिणु'

गुजराती के 'केम छे', 'एम छे' आदि प्रयोगों में यही प्रवृत्ति देखी जा सकती है। गुजराती का '**अम्हें**' सर्वनाम भी अपभ्रंश के **अम्हे** या **अम्हइं** से आया है। राजस्थानी के उत्तम पुरुष में बहुवचन के सर्वनाम **म्हे**, **म्हां** आदि भी अपभ्रंश के एतद् सदृश सर्वनामों में विपर्यय से विकसित हुए हैं।

धातुरूप

राजस्थानी भाषा की अनेक धातुएँ प्राकृत एवं अपभ्रंश से गृहीत हैं। यथा—काढ़<कड्ढ, खा, चढ़<चढ, जान, जाग, डूब<बुड्ड<डुब्ब, बोल<बोल्ल, भूल<भुल्लइ, सुन<सुण, भण<पढइ आदि।

बोलचाल की भाषा के अतिरिक्त राजस्थानी साहित्य में ऐसी अनेक क्रियाएँ प्रयुक्त हुई हैं, जिनका प्राकृत से साम्य है। उदाहरण के लिए 'डिंगल गीत' नामक संग्रह से निम्न क्रियाएँ देखी जा सकती हैं—

'कंवरी सु झला **न्हाण करइ**'

'बण जां रइ नल **बसइ**'

'**हइ** राजवियां जाय विनइ ल्द' —(गीत छत्रियां रो तारीफ रो, पृ० ५)

इन वाक्यों में 'करइ', 'बसइ', 'हइ' क्रमशः प्राकृत की करइ, वसइ एवं हवइ क्रियाओं के रूप हैं। इनमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं है। किन्तु राजस्थानी की कुछ क्रियाएँ परिवर्तित रूप में भी हैं, जिनमें प्राकृत की क्रिया की 'इ' (कथइ कथ+इ) 'ऐ' में परिवर्तित हो गई है। यथा—कथ+इ=ऐ 'कथैं' आदि। तुलनात्मक दृष्टि से कुछ क्रियाएँ दृष्टव्य हैं। यथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजस्थानी (डिंगलगीत)	प्राकृत	हिन्दी
घड़ै (पृ० ७)	घड़इ	बनाता है
जाचै (२१)	जांचई	मांगता है
खांडै (३७)	खण्डइ	तोड़ता है
धारै (३९)	धारइ	धारता है
बीहै (४५)	बीहइ	डरता है
पूरै (४७)	पूरइ	पूरा करता है
जंपै (४९)	जंपइ	बोलता है

इस प्रकार की अनेक क्रियाएँ राजस्थानी साहित्य में खोजी जा सकती हैं। इनके अतिरिक्त अन्य क्रियाओं में भी साम्य देखा जा सकता है। राजस्थानी का प्रयोग है –'कंइ कीधौ' यहां कीधौ प्राकृत की **किदो** (कृतः) का रूपान्तर है। डिंगल गीत है—

'कीधौ तें कोप साझियौ कानौ।' (वही, पृ० ३)

कीधौ के समान देने के अर्थ में 'दीधौ' का प्रयोग भी होता है। यथा—'रिड़मल ने **दीधौ** तें राज।' न केवल राजस्थानी में अपितु सिन्ध की कच्छी के मुहावरों में भी इन शब्दों का प्रयोग होता है। यथा—

काम **कीदौ** भलौ।
डांड़ **दीदौ** भलौ।

राजस्थानी में न केवल वर्तमान काल की क्रियाओं में, अपितु भविष्यत् काल की क्रियाओं में भी प्राकृत एवं अपभ्रंश के प्रयोग दृष्टिगोचर होते हैं। हेमचन्द्र ने **'वर्त्स्यति-स्यस्य सः'** ।। ३८८ ।। सूत्र द्वारा निर्देश किया है कि अपभ्रंश में भविष्यत् अर्थ में 'ति' आदि में 'स्य' के स्थान पर 'स' विकल्प से आदेश होता है। इसके अनुसार प्राकृत की क्रिया **होहिइ** (भविष्यति) अपभ्रंश में **होसइ** हो जाती है।

मारवाड़ी और ढूंढारी के **होसी, जासी, करसी** एवं बहुवचन में **हास्यां जास्यां, करस्यां** आदि रूप अपभ्रंश के हासइ जैसे रूपों से ही निष्पन्न हैं। राजस्थानी साहित्य में 'होइसउं' रूप भी मिलता है।

'तो आडी **होइसउं'** (अचलदास खीचिरी वचनिका १४,६)

पूर्वकालिक क्रियारूपों के सम्बन्ध में हेमचन्द्र ने कहा है कि अपभ्रंश में क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर इ, इड और इवि और अवि ये चार आदेश होते हैं (४३९)। राजस्थानी में इ को छोड़कर अन्य प्रत्यय वाले रूप नहीं बनते। इ प्रत्यय से बनने वाले रूप अपभ्रंश के अनुरूप हैं। यथा—

अपभ्रंश	राजस्थानी
'जइ पुण **मारि** मराहुं,	**'जाइ** ने आऊं'
(तो फिर मारकर ही मरेंगे)	(जाकर और आऊँगा)
	'मेल्ही करि' (छोड़कर)

इसी इ वाले करि से हिन्दी में कर प्रत्यय जुड़ा है। यथा—खाकर, जाकर, आदि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके अतिरिक्त राजस्थानी की धातुओं के बहुत से शब्द अपभ्रंश शब्दसमूह से ही आये हैं। उदाहरण के लिए छोलना क्रिया को लिया जा सकता है। छोलना क्रिया का सम्बन्ध संस्कृत के किसी रूप से नहीं जोड़ा जा सकता। जबकि जनभाषा अपभ्रंश में 'छोलना' इसी रूप में प्रयुक्त होता था। हेमचन्द्र के **'तक्ष्यादीनां छोल्लादयः'** ॥ ३९५ ॥ सूत्र के अनुसार तक्षि आदि धातुओं को छोल्ल आदि आदेश होते हैं। यथा—

'जइ ससि **छोल्लिज्जन्तु**' (यदि चन्द्र को छीला जाता)

मेवाड़ी एवं मारवाड़ी में छोलना इसी अर्थ में प्रयुक्त क्रिया है।[१६] शिष्ट हिन्दी में यही छीलना हो गया है।

शब्द-समूह

राजस्थानी भाषा में उपर्युक्त प्राकृत एवं अपभ्रंश के तत्वों के अतिरिक्त अनेक ऐसे शब्द प्रयुक्त होते हैं, जो किंचित् ध्वनि-परिवर्तनों के साथ प्राकृत एवं अपभ्रंश से ग्रहण कर लिए गये हैं। अव्यय, तद्धित एवं संख्यावाची कुछ ऐसे शब्दों की निम्न तालिका से यह प्रवृत्ति अधिक स्पष्ट हो जाती है : यथा—

आगलो < अगला
अचरिज < अच्छरियं < आश्चर्य
आपणी < आफणी < अप्पणीयम् < आत्मीयम्
उणहीज < उसी का
उन्हो < उण्हो < उष्ण
उन्डा < उण्डा (गहरा)
ऊखाणउ < आहाणउ < आभाणक
खुड़िया < खुडिअ < त्रुटित
घंड़ा < घणो (घना)
छेडी < छेडि < छेरि < छगल
छोरो < छोरो
जेवड़ी < जेवडी (रस्सी)

जौहर

यह शब्द राजस्थानी साहित्य एवं संस्कृति में बहुप्रचलित है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने जौहर को जतुगृह से व्युत्पन्न माना, जो भाषाशास्त्र की दृष्टि से भी ठीक है। यथा—जतुगृह > जउगह > जउघर > जउहर > जौहर। 'अचलदास खीची री वचनिका' में 'जउहर' शब्द प्रयुक्त भी हुआ है। किन्तु राजस्थानी के अन्य ग्रन्थों में इसके लिए 'जमहर' शब्द का प्रयोग हुआ है (हम्मीरायण २६२, २७३ आदि)। 'जमहर' यमगृह = मृत्यु का बोधक है। अतः जौहर इसी शब्द का अपभ्रंश मानना चाहिए। तब उसका विकास-क्रम इस प्रकार होगा—

यमगृह > जमगृह > जमघर > जमहर > जंवहर > जौंहर > जौहर।[१७]

पैलो < पहिला
पातर < पात्र = नर्तकी, हिन्दी में पतुरिया।
पाछलो < पिछला
बहनेवी < बहिणीवई < भगिनीपति, हि० बहनोई
बारहट्ट < बारहट्ट < द्वारभट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बारां < बारह < द्वादस
सगला < सगलो < सकल
साइं < सामि < स्वामि
हलुआ < लहुआ < लघुक

इस प्रकार राजस्थानी भाषा के ध्वनि-तत्वों एवं व्याकरण तत्वों दोनों पर मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषाओं का पर्याप्त प्रभाव है। प्रादेशिक भाषाओं में प्राकृत के तत्वों के अध्ययन का प्रयत्न पूना प्राकृत सेमिनार में किया गया।[१८] किन्तु उसके सभी निबन्ध प्रकाशित नहीं हो सके हैं। प्रो० टी० एन० दवे ने 'राजस्थानी एवं गुजराती पर प्राकृत का प्रभाव' एवं डा० नेमिचन्द्र शास्त्री ने 'भोजपुरी में प्राकृत के तत्व' विषयों का अच्छा विवेचन किया है। इस अध्ययन को पर्याप्त अनुसन्धान की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

१. दृष्टव्य-पाइअसद्दमहण्णव, पृ० ४५
२. ग्रियर्सन-लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, खण्ड १, भाग १
३. डा० चटर्जी—'राजस्थानी भाषा' पृ० ६५
४. मुन्शी—'गुजराती एण्ड इटस् लिटरेचर'
५. It is spoken in Rajputana and Western Portion of Central India and also in the neighbouring tracts of central Proviences, Sind and the Panjab. —Grierson—L. S. I. Vol. I Part I. p. 171.
६. 'अप्पाँ-तुप्पाँ' भणिरे अह पेच्छइ मारुए तत्तो'—कुव० १५३·३ एवं दृष्टव्य—लेखक का प्रबन्ध—'कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन', छठा अध्याय।
७. डा० शिवस्वरूप शर्मा—'राजस्थानी गद्य साहित्य', पृ० २ पर उद्धृत सन्दर्भ।
८. दृष्टव्य, वही, पृ० ४, सन्दर्भ
९. Dr. R. C. Dwivedi 'Influence of Sanskrit on the Rajasthani language and literature'.—Charu Dev Shastri Felicitation Volume p. 217-32.
१०. 'चतुर्थ्याः षष्ठी'। हेम० ८/३/१३१
११. डा० तंगारे—'हिस्टारिकल ग्रामर आफ अपभ्रंश', पृ० १०४
१२. डा० वीरेन्द्र श्रीवास्तव—अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृ० १२४
१३. 'स्यम्-जस-शसां लुक्'॥ ३४४॥
१४. 'अ-डड-डुल्लाः स्वार्थिक-क-लुक् च'॥ ४२९॥
१५. रावत सारस्वत—'डिंगलगीत' शब्दार्थ, दृष्टव्य
१६. डा० के० के० शर्मा—'मेवाड़ी के क्रियापदबन्द', नागरी प्रचारिणी पत्रिका, मई जून ७३।
१७. डा० दशरथ शर्मा—भूमिका पृ० ७२, 'हम्मीरायण'
१८. Proceedings of the Seminar in Prakrit Studies. Poona, 1969.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org